



वेदादिविधसच्छास्त्रप्रमाणैः समन्वितः



# सत्यार्थप्रकाशः



—महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

६९वाँ संस्करण, अक्टूबर २००८



## सत्यार्थप्रकाशः

(वेदादिविधसच्छास्त्रप्रमाणैः समन्वितः)

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यैः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-स्वामिविरचितः

प्रकाशक/विक्रय-केन्द्र

**आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट**

४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

मुख्यालय :

४२७, नया बांस, दिल्ली-६

दूरभाष कार्यालय : २३९५८३६०, २३९५३११२, २३९२६६७२

मूल्य : ४० रु०

|                        |                   |
|------------------------|-------------------|
| दयानन्दाब्द            | : १८५             |
| विक्रमाब्द             | : २०६५            |
| सृष्टि-संवत्           | : १,९६,०८,५३,१०९  |
| पूर्व प्रकाशित         | : ९,४३,६५०        |
| प्रस्तुत ६९वाँ संस्करण | : २०,०००          |
| कुल योग                | : <u>९,६३,६५०</u> |

मुद्रक :

राम कृष्ण प्रैस

ए-२६, फेज-II, नारायणा इन्ड० एरिया

नई दिल्ली-२८, दूरभाष : २५७०१२४४

१५वें संस्करण का—

## प्रकाशकीय

पाठकवृन्द ! आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने आपकी सेवा में प्रस्तुत 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना करके मानव जाति का अवर्णनीय उपकार किया है। सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करना ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है, और यही सब सुधारों का मूल सूत्र है। अतः महर्षि ने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—“सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।” वह सत्य-उपदेश मनुष्यकृत अनार्ष ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता जिस से मानव-जीवन का कल्याण हो सके। हितकारी, प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण विषयों का अति सरलता से प्रतिपादन आर्ष ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है। तृतीय समुल्लास में उल्लिखित आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से लाभ और अनार्ष ग्रन्थों के अध्ययन से हानि पर अवश्य ध्यान देना चाहिए जो जिज्ञासु आर्ष ग्रन्थों में गोता लगाता है। वह अवश्य ही बहुमूल्य मोतियों को प्राप्त करके अपना जीवन सफल बना सकता है।

महर्षि की अनुपम रचना सत्यार्थप्रकाश का संक्षिप्त परिचय निम्न है—

(१) इसी ग्रन्थ में ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त ऋषि-मुनियों के वेद-प्रतिपादित सारभूत विचारों का संग्रह है। अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, दुराग्रही लोगों ने जो वेदादि सच्छास्त्रों के मिथ्या अर्थ करके उन्हें कलंकित करने का दुःसाहस किया था, उन के मिथ्या अर्थों का खण्डन और सत्यार्थ का प्रकाश अकाट्य युक्तियों और प्रमाणों से इस में किया गया है। किसी नवीन मत की कल्पना इस ग्रन्थ में लेशमात्र नहीं है।

(२) वेदादि सच्छास्त्रों के अध्ययन विना सत्य-ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं। उनको समझने के लिए यह ग्रन्थ कुञ्जी का कार्य करता है। इस समय इस ग्रन्थ के अध्ययन किये विना वेदादि सच्छास्त्रों का सत्य-सत्य अर्थ समझना अति कठिन है। इस को पूर्णतया समझे विना बड़े-बड़े उपाधिधारी दिग्गज विद्वान् भी अनेक अनर्थमयी भ्रान्तियों से लिप्त रहते हैं।

(३) जन्म लेकर मृत्यु-पर्यन्त मानव जीवन की ऐहलौकिक और पारलौकिक समस्त समस्याओं को सुलझाने के लिए यह ग्रन्थ एकमात्र ज्ञान का भण्डार है।

(४) ऋषि दयानन्द से पूर्ववर्ती ऋषियों के काल में संस्कृत का व्यापक रूप में व्यवहार था और वेदों के सत्य अर्थ का ही प्रचार था। उस समय के सभी आर्ष ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होते हैं। महाभारत के पश्चात् सत्य वेदार्थ का लोप और संस्कृत का अतिहास हुआ। विद्वानों ने अल्प विद्या और स्वार्थ के वशीभूत होकर जनता को भ्रम में डाला एवं मतवादियों ने बहुत से आर्ष ग्रन्थ नष्ट करके ऋषि-मुनियों के नाम पर मिथ्या ग्रन्थ बनाये। उन के ग्रन्थों में प्रक्षेप किया जिस से सत्यविज्ञान का लोप हुआ। उस नष्ट हुए विज्ञान को महर्षि ने इस ग्रन्थ में प्रकट किया है। महर्षि ने इस ग्रन्थ में बहुमूल्य मोतियों को चुनचुनकर आर्यभाषा में अभूतपूर्व माला तैयार की जिस से सर्वसाधारण शास्त्रीय सत्य मान्यताओं को

जानकर स्वार्थी विद्वानों के चंगुल से बच सकें ।

(५) महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश प्रधान ग्रन्थ है। इस में उनके सभी ग्रन्थों का सारांश आ जाता है।

(६) यह ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो पाठकों को इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सर्वतन्त्र, सार्वजनीन, सनातन मान्यताओं के परीक्षण के लिए आह्वान देता है।

(७) इसके पढ़े बिना कोई भी आर्य ऋषि के मन्तव्यों और उनके कार्यक्रमों को भली प्रकार नहीं समझ सकता एवम् अन्यो के उपदेशों में प्रतिपादित मिथ्या सिद्धान्तों को नहीं पहचान सकता । जिससे अनेक भ्रान्त धारणाएं मस्तिष्क में बैठ जाती हैं जिनके निराकरण के लिए इस ग्रन्थ का अनेक बार अध्ययन सर्वथा अनिवार्य है।

(८) इसके प्रारम्भ में 'त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि' इत्यादि से जो प्रतिज्ञा की है उसी के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ में सत्यार्थ का प्रकाश करते हुए अन्त में प्रतिज्ञा का उपसंहार किया है।

(९) अत्यन्त समृद्धिशाली, सर्वदेशशिरोमणि भारत देश का पतन किस कारण से हुआ एवम् उत्थान किस प्रकार हो सकता है, इस विषय पर इस ग्रन्थ में पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

(१०) इस में आर्यसमाज और मत-मतान्तरों के अन्तर को अनेक स्थानों पर एवम् एकादश समुल्लास में विशेष रूप से खोलकर समझाया गया है।

(११) मानव जाति के पतन का कारण मतवादियों की मिथ्या धारणाएं हैं जिनका खण्डन भी प्रमाण और युक्तिपूर्वक इस में किया गया है।

(१२) इसमें मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को ऐसी सरल रीति से समझाया गया है कि जिसे पढ़कर साधारण शिक्षित व्यक्ति भी एक अच्छा दार्शनिक बन सकता है। जिस ने इस ग्रन्थ को न पढ़कर नव्य महाकाव्य अनार्ष ग्रन्थों के आधार पर दार्शनिक सिद्धान्तों को पढ़ा है उस की मिथ्या धारणाओं का खण्डन और सत्य मान्यताओं का मण्डन इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला सरलता से कर सकता है।

(१३) ऋषि के मन्तव्यों पर इस ग्रन्थ को पढ़ने से पूर्व जितनी भी शंकाएं किसी को होती हैं। वे सब इस के पढ़ने से समूल नष्ट हो जाती हैं क्योंकि उन सब शंकाओं का समाधान इसमें विद्यमान है।

(१४) **वर्तमान में बने राजनीतिक दल पक्षपात से पूर्ण होने के कारण स्वयं सम्प्रदाय हैं। मतवादियों और उन में शब्दमात्र का भेद है, तत्त्वतः अभेद है।** उनके द्वारा साम्प्रदायिकता की बहुत वृद्धि हुई है। इस ग्रन्थ में साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी हानियों का यथार्थ दिग्दर्शन है। साम्प्रदायिकता को समूल नष्ट करने के उपाय भी इस ग्रन्थ में बताये गये हैं किन्तु खेद है कि दल (सम्प्रदाय) पक्षपात-रहित, मानव के कल्याणकारक ऋषि के पूर्ण सत्य मन्तव्यों को भी साम्प्रदायिक कह कर सम्प्रदाय शब्द के अज्ञानतापूर्ण दूषित अर्थ का प्रचार कर नास्तिकता का प्रचार कर रहे हैं और 'उलटा चोर कोतवाल को दण्डे' वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं।

**यह बहुत आश्चर्य है कि आर्यसमाज के नेता भी ऐसे दलों के सदस्य हैं जो मतवादियों और आर्यसमाज में कोई भेद नहीं मानते। एकमात्र ऋषि**

**दयानन्द ने ही इस ग्रन्थ में सब सम्प्रदायों को समाप्त कर एक सत्य-मतस्थ करने की प्रतिज्ञा की है और उसके उपाय भी बताये हैं।**

महर्षि के ग्रन्थों की महिमा का पूर्ण परिज्ञान तो उनके बार-बार अध्ययन, मनन एवम् उसके अनुसार आचरण करने से ही हो सकता है। यहां तो केवल उस के विषय में यथासम्भव दिग्दर्शन मात्र ही कराया गया है।

आर्ष साहित्य में भाषा सरल एवं भाव गम्भीर होते हैं। उन के गम्भीर भावों को जानने के लिए उनका बार-बार अध्ययन करना चाहिए। श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने जो अत्यन्त मेधावी थे, सत्यार्थप्रकाश को चौदह बार पढ़कर यह लिखा था कि जब-जब मैं इस ग्रन्थ को पढ़ता हूँ तब-तब नई-नई बातें ही मुझ को मिलती हैं। इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि इस आर्ष ग्रन्थ के अध्ययन से पाठकों को पं० गुरुदत्त जी के समान अमूल्य रत्न मिलेंगे।

ऋषि ने अपने समय में वर्तमान किसी भी अनार्ष साहित्य को पठन-पाठन में नहीं रखा। उन की इस पद्धति का अनुसरण किये बिना सत्य ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है। महर्षि की मान्यताओं पर श्रद्धा रखने वाले भी 'लेकिन शब्द का सहारा लेकर तदनुसार नहीं चलते। अतः वे अनार्ष ग्रन्थों से बहुत सी भ्रान्त धारणाएं प्राप्त कर सन्देहयुक्त ही रहते हैं। भ्रान्त संस्कार सत्यज्ञान की प्राप्ति में बराबर बाधक बने रहते हैं। गुरुवर विरजानन्द जी का यह कहना सर्वथा यथार्थ था कि "पहले अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में डाल आओ फिर मेरे पास पढ़ने के लिए आना।"

ऋषि ने आर्ष ग्रन्थों के गुणों का कथन एवम् अपने समय में विद्यमान बहुत से अनार्ष ग्रन्थों को नामनिर्देश पूर्वक दोषयुक्त बताया तथा कतिपय वेदविरुद्ध ग्रन्थों के वचनों की अपने ग्रन्थों में समीक्षा भी की। उन्होंने जिन दोषों का कथन किया है वे दोष आज तक के समस्त अनार्ष साहित्य में भी विद्यमान हैं।

ऋषि का यह वचन भी ध्यान देने योग्य है कि जितना ज्ञान आवश्यक है वह वेदादि सच्छास्त्रों में उपलब्ध है। उनके ग्रहण में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। उन के अतिरिक्त विचार तो तदनुकूल होने से ही प्रामाणिक हैं। प्रथम आर्ष साहित्य पढ़े बिना तदनुकूलता का ज्ञान कैसे हो सकता है ? अतः सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रथम आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ने चाहिए; यह निश्चित तथ्य है।

अभी तक दोषपूर्ण ग्रन्थों का तथा उनकी मान्यताओं का बराबर प्रचार हो रहा है, उसको रोकना परम आवश्यक है। यह महर्षि दयानन्द तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन तथा उसके प्रचार एवं प्रसार से ही सम्भव है।

सत्यार्थप्रकाश द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार सब से अधिक हुआ है, अतः 'आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट' ने इस ग्रन्थ का प्रचार करना अपना मुख्य उद्देश्य निश्चित किया है। ट्रस्ट इस ग्रन्थ का सुन्दर प्रकाशन करके लागतमात्र से भी न्यून मूल्य में विक्रय करता है।

ऋषि के जीवनकाल में छपे द्वितीय-संस्करणानुसार सम्पादन कराके विशुद्ध मूलरूप प्रस्तुत किया गया है। ऋषि के मूल ग्रन्थ में कोष्ठक [ ] देने तथा ऋषि की इच्छा के विरुद्ध अपने नाम से टिप्पणी चढ़ाने एवं पाठ-परिवर्तन करने के पक्ष में हम नहीं हैं। किसी लेखक ने अपने मूल ग्रन्थ में किसी अन्य को पाठपरिवर्तन

तथा टिप्पणियों में पाठ के विरुद्ध उल्लेख करने का अधिकार आज तक नहीं दिया तो फिर ऋषि दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् उन की अनुपस्थिति में इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा करना क्या आत्मविरुद्ध आचरण नहीं है। क्या ऐसे व्यक्ति वेद की “असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥” इस व्यवस्था से बच सकेंगे? बारह वर्ष से आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट ऋषि के सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थों में सम्पादकों द्वारा किये गये पाठ-परिवर्तनों एवम् ग्रन्थों में पाठ-विरुद्ध दी गई शतशः टिप्पणियों की बराबर अपने द्वारा सम्पादित इन ग्रन्थों के सम्पादकीय में युक्तिप्रमाण-सहित सविस्तार समीक्षा कर रहा है। किन्तु संशोधक आक्षेपों का उत्तर ही नहीं देते। वे लेख, पत्र-व्यवहार अथवा परस्पर मिलकर किसी भी रूप में सत्यनिर्णय के लिए तैयार नहीं हुए। एक स्थान से संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार का मिला कि मैं अपनी कहता रहूँ तुम अपनी कहते रहो। जब कि हमारे ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्कारविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थों में टिप्पणियों की सविस्तार समालोचना की गई थी जिस का आज तक उत्तर नहीं मिला है। तब तीसरे ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का भी उन्हीं के द्वारा भ्रामक एवम् अशुद्ध टिप्पणियों सहित सम्पादन किया गया है। यह उनका हठ, दुराग्रह और मिथ्याभिमान नहीं तो और क्या है ? इन पाठ-विरुद्ध अशुद्ध टिप्पणियों द्वारा सम्पादक ने पाठकों में संशय और भ्रान्त धारणा ही उत्पन्न की है। क्योंकि तत्सम्बन्धी भावों का स्पष्टतः कथन वहां नहीं होता। टिप्पणियां भिन्न स्थानों पर बहुत दूर-दूर होती हैं। टिप्पणियों की समीक्षा उसी प्रकार के भिन्न-भिन्न स्थानों पर तो की ही नहीं जा सकती। अतः पाठ-विरुद्ध टिप्पणियों का एक स्थान पर उत्तर देने के लिए हम को अत्यधिक श्रम करना पड़ा, फिर भी टिप्पणीकार से समीक्षा का उत्तर नहीं मिला। यदि सम्पादक को ऋषिकृत ग्रन्थों की समालोचना करनी ही इष्ट है तो उसके भावों को पृथक् पुस्तक के रूप में दे समीक्षा करनी योग्य है। ऋषि दयानन्द के वचन टिप्पणीकार के समान अप्रामाणिक नहीं हैं। उन की पूरी परीक्षा की जा सकती है। किसी ग्रन्थ के विरुद्ध लिखने का यह टिप्पणी वाला प्रकार निन्दनीय है। मूल ग्रन्थ में टिप्पणीकारों का यह पाठ-विरुद्ध दुःसाहसिक कार्य अन्यत्र नहीं देखा गया।

एक संस्थान प्रचार-संस्करण के नाम से इस ग्रन्थ को छाप रहा है जिस में मूल ग्रन्थ के शीर्षकों को निकाल कर उन के स्थान पर अपनी ओर से अधूरे, अशुद्ध विषय लिख दिये हैं। एवं ग्रन्थ के मध्य में अपनी ओर से यत्र-तत्र अनेक स्थानों पर नये शीर्षक बढ़ाये हैं। इनमें बहुत स्थानों पर अशुद्धियां भी हैं। बढ़ाये हुए शीर्षकों पर कोई चिह्न भी नहीं लगाया गया है। सब स्थानों पर इस प्रकार के छोटे-छोटे समस्त शीर्षक नहीं दिये हैं जिससे उपयोगिता समाप्त हो गई है और पाठकों को भ्रान्ति में डाला गया है।

यदि संशोधकों के ये दुष्कृत्य नहीं रोके गये तो भविष्य में महर्षि के ग्रन्थों में अन्य आर्ष ग्रन्थों की भांति प्रक्षेपों का पता लगाना दुष्कर ही हो जायेगा। जिससे भविष्य में ऋषि के ग्रन्थों में असंशोधित पाठों में भी सन्देह होने लगेगा। महर्षि के ग्रन्थों में मिलावट अथवा सभ्य प्रकार की बढ़ती हुई मनोवांछित टिप्पणियों की बाढ़ को ट्रस्ट सर्वथा समाप्त करना चाहता है। ट्रस्ट ने इस दूषित मनोवृत्ति को रोकने के लिए ऋषि के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थों को फोटो-प्रिन्ट से छपवा दिया है। सम्पादकों को उन मूल ग्रन्थों के अनुसार ही सम्पादन करना चाहिए। प्रेस-अशुद्धियां ठीक करने और पाठ-संशोधन करने में महान् अन्तर होता है! छपने-छपाने की अशुद्धियां तो ठीक करनी ही चाहिए।

इस संस्करण में सभी प्रमाणों के पते द्वितीय संस्करणानुसार ही दिये हैं। प्रायः सम्पादक ऋषि के ग्रन्थों में जहां प्रमाणों के पते नहीं दिये गये हैं वहां अपनी ओर से प्रमाणों के पते देना अच्छा समझते हैं। महर्षि के ग्रन्थों में मनुस्मृति के बहुत प्रमाण दिये गये हैं, किन्तु उन के पते नहीं दिये गये हैं, जिस से महर्षि का दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि मनुस्मृति में प्रक्षेप भी हैं। यदि कभी मनुस्मृति का शुद्ध संस्करण उपलब्ध हो जाये तो सब दिये पते अशुद्ध होंगे। एवं महर्षि द्वारा दिये प्रमाणों के पतों को देखने से यह सिद्ध होता है कि ऋषि ने प्रमाणों एवं पतों को बहुधा स्मृतिबल से लिखवाया है, ग्रन्थ सामने रखकर नहीं। ऋषि के ग्रन्थों में अपनी इच्छा से प्रमाणों के पते देकर उक्त तथ्य को समाप्त कर दिया गया है। यह तथ्य सुरक्षित रहना चाहिए तथा मूल को नहीं बदलना चाहिए। मूल ग्रन्थ में प्रमाणों के पते देने से मूल ग्रन्थ में अनेक दोष उत्पन्न हुए हैं। विस्तार-भय से यहां उनका उल्लेख नहीं दिया जा सकता। सम्पादकों ने जो पते दिये हैं उन में सब की एकरूपता नहीं पाई जाती। अतः हम ने प्रमाणों के पतों को भी द्वितीय संस्करणानुसार ही रखा है।

मूल में अल्पविराम, अर्द्धविराम, पूर्णविराम आदि चिह्न तथा प्रकरण के अनुसार सन्दर्भों की रचना अपनी ओर से की गई है। जिस से पाठक मूल के तात्पर्य एवं प्रकरण को सरलता से ग्रहण कर सकें। बढ़िया कागज़ तथा सुन्दर छपाई से ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित यह पञ्चदश संस्करण है। इस संस्करण के अतिरिक्त ट्रस्ट अब तक १,०३,६०० सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित कर चुका है।

इस का सम्पादन धर्मपाल व्याकरणाचार्य ने अत्यन्त पुरुषार्थ और योग्यता से किया है।

दिसम्बर, १९७७

ऋषिचरणों का अनुचर  
दीपचन्द्र आर्य  
प्रधान, आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट

॥ ओ३म् ॥

## ६९वें संस्करण का प्रकाशकीय

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट' का मुख्य उद्देश्य है "महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों-आर्ष साहित्य का प्रचार और प्रसार।" अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए 'ट्रस्ट' निःस्वार्थ सेवाभाव से साहित्य का प्रकाशन करके लागत मात्र पर अथवा उससे भी कम मूल्य पर जिज्ञासु पाठकों तक पहुंचाता है। 'महर्षि' के साहित्य को विना किसी प्रक्षेप के मूल रूप में प्रकाशित करना ट्रस्ट की अपनी यह अलग पहचान है।

प्रस्तुत संस्करण से पूर्व 'ट्रस्ट' सत्यार्थप्रकाश के ६८ संस्करण प्रकाशित कर ९,४३,६५० सत्यार्थप्रकाश पाठकों तक पहुंचा चुका है, जो कि अपने आप में एक कीर्तिमान है। ऋषि के मिशन को ध्यान में रखते हुए इसका मूल्य लागत से भी कम रखा गया है। और निश्चय ही इसका सकारात्मक परिणाम हम सब के सामने है।

पाठकों की अत्यधिक मांग थी कि सत्यार्थप्रकाश की भी कम्पोजिंग कम्प्यूटर से करायी जाये। उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए सर्वथा नवीन रूप में उत्तम कागज एवं सुन्दर जिल्द में यह '६९ वां संस्करण' पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए हम अतीव हर्ष व सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं।

आशा है, महर्षि भक्त वैदिक धर्मानुरागी पाठकवृन्द इस संस्करण से लाभान्वित होंगे।

विनीत :

**धर्मपाल आर्य**

मन्त्री, आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट



## सत्यार्थप्रकाशसूचीपत्रम्

|                                |               |  |                |
|--------------------------------|---------------|--|----------------|
| निवेदनम्                       | ११            | पञ्चमसमुल्लासः                                 | १०५-११५        |
| भूमिका                         | १२            | वानप्रस्थाश्रमविधिः                            | १०५            |
| <b>प्रथमसमुल्लासः</b>          | <b>१७-३२</b>  | संन्यासाश्रमविधिः                              | १०६            |
| ईश्वरनामव्याख्या               | १७            | <b>षष्ठसमुल्लासः</b>                           | <b>११६-१४५</b> |
| मङ्गलाचरणसमीक्षा               | ३१            | राजधर्मविषयः                                   | ११६            |
| <b>द्वितीयसमुल्लासः</b>        | <b>३३-३९</b>  | सभात्रयकथनम्                                   | ११६            |
| बालशिक्षाविषयः                 | ३३            | राजलक्षणानि                                    | ११७            |
| भूतप्रेतादिनिषेधः              | ३५            | दण्डव्याख्या                                   | ११९            |
| जन्मपत्रसूर्यादिग्रहसमीक्षा    | ३६            | राजकर्तव्यम्                                   | १२०            |
| <b>तृतीयसमुल्लासः</b>          | <b>४०-६९</b>  | अष्टादशव्यसननिषेधः                             | १२१            |
| अध्ययनाध्यापनविषयः             | ४०            | मन्त्रिदूतादिराजपुरुषलक्षणानि                  | १२२            |
| गुरुमन्त्रव्याख्या             | ४१            | मन्त्र्यादिषु कार्यनियोगः दुर्गनिर्माणव्याख्या | १२४            |
| प्राणायामशिक्षा                | ४२            | युद्धकरणप्रकारः                                | १२५            |
| सन्ध्याग्निहोत्रोपदेशः         | ४३            | राज्यरक्षणादिविधिः                             | १२६            |
| यज्ञपात्राकृतयः                | ४३            | ग्रामाधिपत्यादिवर्णनम्                         | १२८            |
| उपनयनसमीक्षा                   | ४५            | करग्रहणप्रकारः                                 | १३०            |
| ब्रह्मचर्योपदेशः               | ४५            | मन्त्रकरणप्रकारः                               | १३१            |
| ब्रह्मचर्यकृत्यवर्णनम्         | ४७            | आसनादिषाड्गुण्यव्याख्या                        | १३२            |
| पञ्चधा परीक्ष्याध्ययनाध्यापने  | ५२            | राज्ञो मित्रोदासीनशत्रुषु वर्तनम्              | १३३            |
| पठनपाठनविशेषविधिः              | ६१            | शत्रुभिर्युद्धकरणप्रकारश्च                     | १३४            |
| ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः | ६४            | व्यापारादिषु राजभागकथनम्                       | १३६            |
| स्त्रीशूद्राध्ययनविधिः         | ६७            | अष्टादशविवादमार्गेषु धर्मेण न्यायकरणम्         | १३७            |
| <b>चतुर्थसमुल्लासः</b>         | <b>७०-१०४</b> | साक्षिकर्तव्योपदेशः                            | १३९            |
| समावर्तनविषयः                  | ७०            | साक्ष्यानुते दण्डविधिः                         | १४१            |
| दूरदेशे विवाहकरणम्             | ७१            | चौर्यादिषु दण्डादिव्याख्या                     | १४२            |
| विवाहे स्त्रीपुरुषपरीक्षा      | ७१            | <b>सप्तमसमुल्लासः</b>                          | <b>१४६-१७०</b> |
| अल्पवयसि विवाहनिषेधः           | ७२            | ईश्वरविषयः                                     | १४६            |
| गुणकर्मानुसारेण वर्णव्यवस्था   | ७५            | ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः                     | १५०            |
| विवाहलक्षणानि                  | ८०            | ईश्वरज्ञानप्रकारः                              | १५५            |
| स्त्रीपुरुषव्यवहारः            | ८१            | ईश्वरस्यास्तित्वम्                             | १५६            |
| पञ्चमहायज्ञाः                  | ८५            | ईश्वरावतारनिषेधः                               | १५७            |
| पाखण्डितिरस्कारः               | ८८            | जीवस्य स्वातन्त्र्यम्                          | १५८            |
| प्रातरुत्थानम्                 | ८९            | जीवेश्वरयोर्भिन्नत्ववर्णनम्                    | १५९            |
| पाखण्डिलक्षणानि                | ९०            | ईश्वरस्य सगुणनिर्गुणकथनम्                      | १६५            |
| गृहस्थधर्माः                   | ९१            | वेदविषयविचारः                                  | १६६            |
| पण्डितलक्षणानि                 | ९३            | <b>अष्टमसमुल्लासः</b>                          | <b>१७१-१९१</b> |
| मूर्खलक्षणानि                  | ९४            | सृष्ट्युत्पत्त्यादिविषयः                       | १७१            |
| पुनर्विवाहविचारः               | ९५            | ईश्वरभिन्नाया प्रकृतेरुपादानकारणत्वम्          | १७४            |
| नियोगविषयः                     | ९६            | सृष्टौ नास्तिकमतनिराकरणम्                      | १७५            |
| गृहाश्रमश्रैष्ठ्यम्            | १०३           | मनुष्याणामादिसृष्टेः स्थानादिनिर्णयः           | १८५            |

|  |                |  |                |
|--|----------------|--|----------------|
| आर्य्यम्लेच्छादिव्याख्या                 | १८६            | माध्वलिङ्गाङ्कितब्राह्मप्रार्थनासमाजादिसमीक्षा | ३०७            |
| ईश्वरस्य जगदाधारत्वम्                    | १८७            | आर्य्यसमाजविषयः                                | ३१२            |
| <b>नवमसमुल्लासः</b>                      | <b>१९२-२१२</b> | तन्त्रादिविषयकप्रश्नोत्तराणि                   | ३१३            |
| विद्याऽविद्याविषयः                       | १९२            | ब्रह्मचारिसंन्यासिसमीक्षा                      | ३१८            |
| बन्धमोक्षविषयः                           | १९५            | आर्यावर्तीयराजवंशावली                          | ३२१            |
| <b>दशमसमुल्लासः</b>                      | <b>२१२-२२३</b> | <b>अनुभूमिका</b>                               | <b>३२५</b>     |
| आचाराऽनाचारविषयः                         | २१२            | <b>द्वादशसमुल्लासः</b>                         | <b>३२६-३७७</b> |
| भक्ष्याऽभक्ष्यविषयः (इति पूर्वाद्धः)     | २१८            | नास्तिकमतसमीक्षा                               | ३२६            |
| <b>उत्तराद्धः</b>                        |                | चारवाकमतसमीक्षा                                | ३२७            |
| <b>अनुभूमिका</b>                         | <b>२२४</b>     | चारवाकादिनास्तिकभेदाः                          | ३२८            |
| <b>एकादशसमुल्लासः</b>                    | <b>२२५-३२४</b> | बौद्धसौगतमतसमीक्षा                             | ३३०            |
| आर्यावर्तदेशीयमतमत्तान्तरखण्डनमण्डनविषयः | २२५            | जैनबौद्धयोरैक्यम्                              | ३३७            |
| मन्त्रादिसिद्धिनिराकरणम्                 | २२६            | आस्तिकनास्तिकसंवादः                            | ३४०            |
| वाममार्गनिराकरणम्                        | २३०            | जगतोऽनादित्वसमीक्षा                            | ३४४            |
| अद्वैतवादसमीक्षा                         | २३६            | जैनमते भूमिपरिमाणम्                            | ३४६            |
| भस्मरुद्राक्षतिलकादिसमीक्षा              | २४४            | जीवादन्त्यस्य जडत्वं पुद्गलानां                |                |
| वैष्णवमतसमीक्षा                          | २४७            | पापे प्रयोजकत्वं च                             | ३४८            |
| मूर्तिपूजासमीक्षा                        | २५०            | जैनधर्मप्रशंसादिसमीक्षा                        | ३५०            |
| पञ्चायतनपूजासमीक्षा                      | २५७            | जैनमतमुक्तिसमीक्षा                             | ३६३            |
| गयाश्राद्धसमीक्षा                        | २५९            | जैनसाधु-लक्षणसमीक्षा                           | ३६६            |
| जगन्नाथतीर्थसमीक्षा                      | २६०            | जैन (२४) तीर्थङ्करव्याख्या                     | ३७१            |
| रामेश्वरसमीक्षा                          | २६१            | जैनमते जम्बूद्वीपादिविस्तारः                   | ३७३            |
| कालियाकन्तसोमनाथादिसमीक्षा               | २६२            | <b>अनुभूमिका</b>                               | <b>३७८</b>     |
| द्वारिकाज्वालामुखीसमीक्षा                | २६३            | <b>त्रयोदशसमुल्लासः</b>                        | <b>३७९-४२२</b> |
| हरद्वारबदरीनारायणादिसमीक्षा              | २६४            | कृश्चीनमतसमीक्षा                               | ३७९            |
| गङ्गास्नानादिसमीक्षा                     | २६६            | लैव्यव्यवस्थापुस्तकम्                          | ३९६            |
| तीर्थशब्दस्यार्थः                        | २६७            | गणनापुस्तकम्                                   | ३९८            |
| गुरुमाहात्म्यसमीक्षा                     | २६७            | समुएलाख्यस्य द्वितीयं पुस्तकम्                 | ३९८            |
| अष्टादशपुराणसमीक्षा                      | २६८            | राज्ञां पुस्तकम्                               | ३९९            |
| शिवपुराणसमीक्षा                          | २६९            | कालवृत्तस्य पुस्तकम्                           | ३९९            |
| भागवतसमीक्षा                             | २७१            | ऐयूबाख्यस्य पुस्तकम्                           | ४००            |
| सूर्यादिग्रहपूजासमीक्षा                  | २७६            | उपदेशस्य पुस्तकम्                              | ४००            |
| और्ध्वदैहिक-दानादिसमीक्षा                | २७८            | मत्तीरचितं इञ्जीलाख्यम्                        | ४००            |
| एकादश्यादिव्रतसमीक्षा                    | २८३            | मार्करचितं इञ्जीलाख्यम्                        | ४१२            |
| मारणमोहनोच्चाटनवाममार्गसमीक्षा           | २८७            | लूकरचितं इञ्जीलाख्यम्                          | ४१२            |
| शैवमतसमीक्षा                             | २८७            | योहनरचितसुसमाचारः                              | ४१२            |
| शाक्तवैष्णवमतसमीक्षा                     | २८८            | योहनप्रकाशितवाक्यम्                            | ४१४            |
| कबीरपन्थसमीक्षा                          | २९२            | <b>अनुभूमिका</b>                               | <b>४२३</b>     |
| नानकपन्थसमीक्षा                          | २९३            | <b>चतुर्दशसमुल्लासः</b>                        | <b>४२४-४७४</b> |
| दादूपन्थसमीक्षा                          | २९५            | यवनमतसमीक्षा                                   | ४२४            |
| गोकुलिगोस्वामिममतसमीक्षा                 | २९७            | <b>स्वमन्तव्यामन्तव्यविषयः</b>                 | <b>४७५-४८०</b> |
| स्वामिनारायणमतसमीक्षा                    | ३०३            |  |                |

## निवेदन

परमपूज्य श्रीस्वामी जी महाराज ने यह 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ द्वितीय बार शुद्ध करके छपवाया है। प्रथमावृत्ति में अन्त के कई प्रकरण कई कारणों से नहीं छपे थे सो भी इस में संयुक्त कर दिये हैं। इस ग्रन्थ में आदि से अन्तपर्यन्त मनुष्यों को वेदादिशास्त्रानुकूल श्रेष्ठ बातों के ग्रहण और अश्रेष्ठ बातों के छोड़ने को उपदेश लिखा गया है।

मतमतान्तरों के विषय में जो लिखा गया है वह प्रीतिपूर्वक सत्य के प्रकाश होने और संसार के सुधरने के अभिप्राय से लिखा गया है, किन्तु निन्दा की दृष्टि से नहीं। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही है कि अविद्याजन्य नाना मतों के फैलने से संसार में जो द्वेष बढ़ गया है इस से एक मतावलम्बी दूसरे मतानुयायी को द्वेषदृष्टि से देखता है वह दूर हो के संसार में प्रेम और शान्ति स्थिर हो।

जिस प्रेम और प्रीति से श्रीस्वामी जी महाराज ने यह ग्रन्थ बनाया है उसी प्रीति से पाठकों को देखना चाहिए। पाठकों को उचित है कि आदि से अन्त तक इस ग्रन्थ को पढ़ कर प्रीतिपूर्वक विचार करें। क्योंकि जो मनुष्य इस के एक खण्ड को देखेगा उस को इस ग्रन्थ का पूरा-पूरा अभिप्राय न खुलेगा।

आशा है कि जिस अभिप्राय से यह ग्रन्थ बनाया गया है उस अभिप्राय पर पाठकगण दृष्टि रख कर लाभ उठावेंगे और ग्रन्थकर्ता के महान् परिश्रम को सफल करेंगे।

इस ग्रन्थ में कई स्थलों में टिप्पणिका की आवश्यकता थी इसलिए मैंने जहाँ-जहाँ उचित समझा वहाँ-वहाँ लिख दी हैं।

यह ग्रन्थ प्रथमावृत्ति में छपा था उस को बिके बहुत दिन हो गये इस कारण से शतशः लोगों की शीघ्रता छपने के विषय में आई, इस कारण से यह द्वितीयावृत्ति अत्यन्त शीघ्रता में हुई है। छापते समय ग्रन्थ के शोधने और विरामादि चिह्नों के देने में जहाँ तक बना बहुत ध्यान दिया परन्तु शीघ्रता के कारण से कहीं भूल रह गई हो तो पाठकगण ठीक कर लें।

( मुन्शी ) समर्थदान

आश्विन कृष्णपक्ष  
संवत् १९३९

प्रबन्धकर्ता, वैदिकयन्त्रालय  
प्रयाग

## सूचना

चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मंज़िल, सिपारा, सूरत और आयत का ब्यौरा लिखा है उस में और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें।

( मुन्शी ) समर्थदान

प्रबन्धकर्ता, वैदिकयन्त्रालय  
प्रयाग

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

## भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था, उस समय और उस से पूर्व संस्कृतभाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है। कहीं-कहीं शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था, क्योंकि इसके भेद किए बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह वह निकाल शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है।

यह ग्रन्थ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वाद्ध और ४ चार उत्तराद्ध में बने हैं, परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे, अब वे भी छपवा दिये हैं।

१. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओङ्काराऽऽदि नामों की व्याख्या।
२. द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।
३. तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति।
४. चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।
५. पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का विधि।
६. छठे समुल्लास में राजधर्म।
७. सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर-विषय।
८. अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।
९. नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या।
१०. दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय।
११. एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्तीय मत मतान्तर का खण्डन मण्डन विषय।
१२. द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।
१३. त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का विषय।
१४. चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्यों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु

जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्याऽसत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल-चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाय, उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायेगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जायेगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उस को सत्य-सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्ते वर्त्तवें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों का प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है।

इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु **‘सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।’** अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हटते।

यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि **‘यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।’** यह गीता का वचन है। इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जान कर यथेष्ट करें।

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे वे सब में अविरोद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो-जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उन का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान्

सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ हों।

यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्तता हूँ। **जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।** क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् हो कर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसे ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

अब आर्यावर्तियों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से मुझ को सर्वथा मन्तव्य है और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

यद्यपि जो १२ बारहवें समुल्लास में चारवाक का मत, इस समय क्षीणाऽस्त सा है और यह चारवाक बौद्ध जैन से बहुत सम्बन्ध अनीश्वरवादादि में रखता है। यह चारवाक सब से बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है, क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जायें।

चारवाक का जो मत है वह, बौद्ध और जैन का मत है, वह भी १२ बारहवें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों तथा जैनों का भी चारवाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोड़ा सा विरोध भी है। और जैन भी बहुत से अंशों में चारवाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है और थोड़ी सी बातों में भेद है, इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है। वह भेद १२ बारहवें समुल्लास में लिख दिया है यथायोग्य वहीं समझ लेना। जो इसका भिन्न है, सो-सो बारहवें समुल्लास में दिखलाया है। बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है।

इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमत संग्रह 'सर्वदर्शनसंग्रह' में दिखलाया है, उस में से यहां लिखा है और जैनों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं। उन में से—

४ चार मूलसूत्र, जैसे—१ आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकालिकसूत्र, और ४ पाक्षिकसूत्र।

११ ग्यारह अंग, जैसे—१ आचारांगसूत्र, २ सुगडांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायांगसूत्र, ५ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपासकदशासूत्र, ८ अन्तगडदशासूत्र, ९ अनुत्तरोववाइसूत्र, १० विपाकसूत्र और ११ प्रश्नव्याकरणसूत्र।

१२ बारह उपांग, जैसे—१ उपवाइसूत्र, २ रावप्सेनीसूत्र, ३ जीवाभिगमसूत्र, ४ पन्नगणासूत्र, ५ जम्बुद्वीपपन्नतीसूत्र, ६ चन्दपन्नतीसूत्र, ७ सूरपन्नतीसूत्र, ८ निरियावलीसूत्र, ९ कप्पियासूत्र, १० कपवडीसयासूत्र, ११ पूप्पियासूत्र, १२ पुप्यचूलियासूत्र।

५ पाँच कल्पसूत्र, जैसे—१ उत्तराध्ययनसूत्र, २ निशीथसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहारसूत्र, और ५ जीतकल्पसूत्र।

६ छह छेद, जैसे—१ महानिशीथबृहद्वाचनासूत्र, २ महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३ मध्यमवाचनासूत्र, ४ पिण्डनिरुक्तिसूत्र, ५ औघनिरुक्तिसूत्र, ६ पर्युषणासूत्र।

१० दश पयत्रासूत्र, जैसे—१ चतुस्सरणसूत्र, २ पञ्चखाणसूत्र, ३ तदुलवैयालिकसूत्र, ४ भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ चन्दाविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ मरणसमाधिसूत्र, ९ देवेन्द्रस्तवनसूत्र, और १०. संसारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, योगोद्धारसूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं।

५ पञ्चाङ्ग, जैसे—१ पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २ निरुक्ति, ३ चरणी, ४ भाष्य। ये चार अवयव और सब मिलके पञ्चाङ्ग कहाते हैं।

इनमें ढूँढिया अवयवों को नहीं मानते और इन से भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिन को जैनी लोग मानते हैं। इन का विशेष मत पर विचार १२ बारहवें समुल्लास में देख लीजिए।

जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मतवाले के हाथ में हो वा छपा हो तो कोई-कोई उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं, यह बात उन की मिथ्या है। क्योंकि जिस को कोई माने, कोई नहीं, इससे वह ग्रन्थ जैन मत से बाहर नहीं हो सकता। हाँ, जिस को कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो, तब तो अग्राह्य हो सकता है। परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो। इसलिए जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिए समझा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते जानते हों तो भी सभा वा संवाद में बदल जाते हैं। इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं। दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते और न पढाते, इसलिए कि उन में ऐसी-ऐसी असम्भव बातें भरी हैं जिन का कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता। झूठ बात का छोड़ देना ही उत्तर है।

१३वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्म-पुस्तक मानते हैं। इन का विशेष समाचार उसी १३ तेरहवें समुल्लास में देखिए और १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत-विषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४वें समुल्लास में देखिए और इस के आगे वैदिकमत के विषय में लिखा है।

जो कोई इस ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा, क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं—आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उस को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है—

‘आकाङ्क्षा’ किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।

‘योग्यता’ वह कहाती है कि जिस से जो हो सके, जैसे जल से सींचना।

‘आसत्ति’ जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना।

‘तात्पर्य’ जिस के लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी

के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उन में से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किए हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्याऽसत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ हों, क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है।

यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे, तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इस का अभिप्राय समझेंगे, इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ।

इस को देख-दिखला के मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करके मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम है।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥ अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ॥  
॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर  
भाद्रपद, शुक्लपक्ष संवत् १९३९

( स्वामी ) दयानन्द सरस्वती